

एक, मेरे हृदय को तो संतुष्टि न मिली ।

मेरी इन बातों को सुनकर, सोचना हूँ, तुम्हें ध्यान आया कि
जिनका स्वार्थी हूँ, जो तेरी प्रगल्भता से अपनी प्रगल्भता नहीं
मालूम करता । प्रगल्भता तो मुझे बड़ी हुई थी । अपने आराध्य देव के
पदों पर प्रगल्भता की मेला देतकर कौन भक्त आनन्द की चरम
सीमा को नहीं छू सकता, कौन भक्त आनन्दार्तिरेक से पावन नहीं
उठता । पर भक्तहृदय आनन्द और प्रगल्भता के लिए ही तो
जल-विह्वल नहीं रहता । प्रगल्भता तो आत्मवेदना की एक अनु-
भूति है । भक्त तो आत्मसमर्पण करके वह विश्रुति ईश्वर है, जो
और बिबाद में पड़े है । अरे, यह अपनेपन का भार ! अरे, इने
पर केंबने की आनुरता ! अरे, इस महान त्याग में भी स्वार्थ की
खोज ! मानव-जीवन कितना अनूर्ण है ! हमारे महान त्याग में
हमारा महान स्वार्थ है । संतुष्टि की नींव इसी त्याग-स्वार्थ की
न मावना पर स्थित है ।

मादल अपना अपनापन अगणित बूंदों में, बूंदें अपना अपना-
पन धाराओं और नदियों में और नदियाँ अपना अपनापन समुद्र
को देने की आनुर है । और वह समुद्र भी तो हर समय विशुद्ध
रूप किसी ऐसे की मोज कर रहा है, जिसके चरणों में वह अपनी
न अलराशि अर्घ्य-रूप में अर्पित करके रिक्त हो जाए । पुष्पो
पना अपनापन अगणित बुझ, बेति, पौधों में ; बुझ, बेति, पौधे
पना अपनापन पुष्प और कलियों में, पुष्प और कलियाँ अपना
पनापन—अपना सौरभ—सभीर में मिश्रित करने को आकुल
और वह सभीर भी तो निरन्तर गचल रहकर हिमी ऐसे को
रहा है, जिसके गचल की एक बार—केवल एक बार—सहण
वह उमी में विलुप्त हो जाए । पना अपना अपनापन दीपक
लागे ; दीपक अपना अपनापन दिवस के आने, दिवस अपना
पनापन रजनी के आने और रजनी—शशि-तारक-मणिमणि

रखनी—अपना अपनापन सूर्य के आगे अर्पण करने की व्याकुल है; और वह सूर्य भी तो आदिसृष्टि से किसी ऐसी महज्ज्योति के चरणों को प्राप्त करने के लिए तपस्या कर रहा है, जिसकी एक बार भारती उतारकर वह कुछ जाए।

इसी प्रकार बादक अपना अपनापन स्वर्गों में प्रकट करके यह चाहता है कि वे किसी के कानों में झल-भर गूँजकर, विस्तृत गगन में दीप्त होकर विनीत हो जाएँ। विवकार अपना अपनापन रेश्माओं तथा रंगों में प्रकट करके यह इच्छा करता है कि वे किसी की आँखों में पल-भर प्रतिबिम्बित होकर घुँघुँसे बनकर तिरोहित हो जाएँ। शिल्पकार अपना अपनापन वायान-प्रतिमाओं में अभिव्यक्त करके यह अभिलाषा करता है कि वे किसी की मृदुल हथेली का लज्जित स्पर्श प्राप्त कर लड़-लड़ होकर बरत पर बिखर जाएँ। और, कवि अपना अपनापन शरीर शब्द-पदों में व्यञ्जित करके चाहता है कि वे किसी के हृदय की सीमता से छूकर संसार के सपन कोलाहल में छिप जाएँ—सो जाएँ।

हाँ, तो इस स्वार्थी मानव की, जिसमें मैं भी एक हूँ, चरम अभिलाषा आत्मोन्नति नहीं, आत्मसमर्पण है। इसका लोभाग्र इसे उस दिन प्राप्त न हो सका। इसी कारण इतनी जल्दी जाब यह कुछ अपनापन लेकर तेरे चरणों में फिर उपस्थित हुआ है। इस अनिवार्य स्वार्थ के लिए मैं लमा की भिक्षा माँगता हूँ। मुझे विश्वास है कि मैं निराश नहीं मोटूँगा। कभी नहीं मोटूँगा।

जाब मदिरा माया हूँ—मदिरा, जिसे पीकर भविष्यत् के भय भाग जाते हैं और भूतकाल के दारुण दुःख दूर हो जाते हैं, जिसे पान कर मात-अपमानों का ध्यान नहीं रह जाता और गौरव का गर्व नुष्ट हो जाता है, जिसे हालकर मानव अपने जीवन की व्यथा, पीड़ा और कठिनाता को कुछ नहीं समझता और जिसे पसकर मनुष्य धर्म, सफ़ट, संताप सभी को भूल जाता है। आह, जीवन

की महिमा, जो इसे विषय होकर बीसी रही है, किसी बारीक विनयी ! यह महिमा उन महिमा के मते को उभार देती, जो की दु सहायिनी नेत्रों को विनयी के मते में विनयी लया हो देव, दुर्गम बाल, विनयी के और विनयी विनयी के बुर, बड़े दुर्गम आकाशों के रत्ता कोनी । धीन, धुन, धनधनु, दुर्गम मानव के बाल धन-धीन की मयम आधि-आधि की बारी । महीनधि है । मेरा हृदय कहता है कि आज हमारी मुझे आकाश है । मे, हमे बाल कर, और हम बाल के उभार में माने को, बाल को, माने दु सहाय को और मय के महिमा बाल को । मे, हमे बी, और हम बाल के माना धीन महीनधि, दुर्गम और मय मयों में बाल । यह, किसे मान है कि यह दुर्गम को महीनधि कर देनेवाला सब किने अकाशों का बाल है ! निमानुम है कि दुर्गम को धीनधि मय कर देनेवाला सब विनयी धीनधि माना में बाल हुआ करता है ।

यह मेरे हृदय की मर्दिना है। मन भगवत्, नृ भवेत्ते जलज है। नृ जलज है, पर प्रमाद पुष्कर पङ्कज है। नृ जलज है, ई नलज है; नृ लज्ज है, मैं विपलज हूँ। मैं भी कीर्तन मधु की खीर में आया था, पर तूने मुझे अपना हृदय दिया, हृदय की प्यासा दी। यह मेरे हृदय की हामा सेरी आत्मा से मन-विषय-कर प्रवाहित हो उठी है। मे, इसे पीकर अपने हृदय की अग्नि को शांत कर। जो हृदय कम मधु का प्यासा था, वही जान प्यास बुझनेवाला मधु हो गया है।

कवि का हृदय नेदल कवि का हृदय नहीं है। उसकी हृदय-गोद में विद्या और विभूति भोजे रहते हैं, सृष्टि दुषमंही बन्नी के समान झीड़ा करती है, और प्रलय नटसट वातक के समान क्षयान मचाता है। उसका हृदयान्न मयल के गान, सधोरन के हास और सागर के रोदन ने प्रतिध्वनित हुआ करता है। उसके

हृदय मन्दिर में जन्म-जीवन-मरण अविरत गति से नृत्य किया करते हैं। इस कारण करि के हृदय के गमने के साथ ही आज समस्त विश्व मादक हाता से परिप्ताबित हो उठा है। जल और घम, मगन और वसन, मिथु और वसुन्धरा, स्वर्ग और नरक, जड़ और चेतन, निरा और दिवस, जन और उपजन, सर और सरिता, मिलन और विरह, प्रणय और नयन, आशा और निराशा, जन्म और भीषण, काल और कर्म—सभी वस्तुएँ जिनका अस्तित्व इस विश्व में है, आज हाता-प्यासा-मधुशालाभन आमाबित हो रही हैं।

मेरे प्यारे, देख, अस्मिन् प्रकृति मधुशाला बनकर झूम रही है। जा, तुझे पुरख बनाकर मैं धारा-रूपिणी बनना माझी-दाला बनूँ। मैं अपने हाथों से प्यासा घर-भरकर तेरे लवणों से लगाऊँ और तू अनन्त काल तक अनन्त पिपासा से इसे पीता चला जाए। न मैं पिपाने से बचूँ और न तू पीने से।

मगयन्, लमा, लमा, लमा ! अरे, अपने इस मृत मूर्तिका-पाश को तेरे ज्योतिर्मय अक्षरों तक से आने का दुस्साहस ! मेरा अभिमान जना कर, मेरे हाथ काँप रहे हैं, मेरा पाश हिल रहा है, मेरी मदिरा गिरी जाती है। अरे, पद भी प्रकपित हो रहे हैं, शरीर के अङ्ग-अङ्ग के चीड़-बुल-से रहे हैं, रोम-रोम सिहर रहा है, अरे, मैं गिरी...

मेरी मदिरा तेरे चरणों में फिर भी चढ़ गई। मैं सन्तुष्ट हूँ। भस्म की मदिरा—विनम्र भस्म की मदिरा—भगवान के अक्षरों पर नहीं, चरणों में ही चढ़नी उचित है। पर ऊपर देखती हूँ। यह क्या ? तेरी आँखों में बहुमत-बालाभन कैसा ? उन्मत्तता कैसी ? मस्ती कैसी ? तेरे अक्षर हिल रहे हैं ? तू मुत्कवा क्यों रहा है ?

क्या तू कुछ कह रहा है ? क्या यही कि—

पीकर मदिरा मस्त हुआ तो
प्यार किया क्या मदिरा से !

क्या तू मेरी मदिरा पान कराने की अभिनाया से ही प्रप
उठा ? अन्य तू और अन्य मैं !

पर तू मुझे उन मद-मरे नयनों से न देख, मेरा भी न जाने
होने लगता है । से, मैं आँख मूँद रही हूँ ।

ओह, उन मतवाली आँखों की ओर न देखा ही जाता है ;
न उनको बिना देखे रहा ही जाता है, उन्हें एक बार फिर से
सूँ ।

पर अरे, अरे, वे मादक नयन कियर गए ? बहु मादक
कियर गया ? उसको वहाँ हँडूँ ? पर क्यों ?

मैं उन्हें न हँडूँगी । उन मादक नयनों की एक चितवन कु
अनन्त काल तक उन्मत्त रखेगी । मस्त को चाहिए सिधु की तुल
और विदु से सन्तोष ।

तेरी मतवाली आँखों की हालत धरा मेरे पत्तकों के प्याले में
छानका करे और जो मुझे देखे वह तेरी मदिरा से मस्त हो उठे ।

प्रयाग

तेरे मदिर नयनों के निरंतर व्याप

२७ अगस्त, १९३३*

* इस समय तक 'कलास्वात उपर सेवास' की समता पर 'अधुराता' ।
कह सहायता थी, दिनांक १९३३ तक, अब इनमें से कुछ 'सारांश' ।
प्रकाशित हुई; इनकी स्थिति १९३३ तक पहुँची और मार्च, '३४ तक, ज
से मंच-कर्म में अपने को सम्मिलित करें, प्रयाग में ही गई (नो अती गरी)
अपने सम्मान कर्म में आई ।

प्रयाग



मधुशाला

१

मृदु भावों के अंगूरों की
आज बना साया हाता,
प्रियतम, अपने ही हावों से
आज पिमाऊँगा प्यासा;
पहले पीय सगा भूँ तेरा,
फिर प्रसाद जग बाएगा;
सबसे पहले तेरा स्वागत
करती मेरी मधुशाला ।

२

प्यास तुमसे तो, बिन्ध सगाकर
 पूर्ण निकालूँगा हाता,
 एक पाँव मे साँझी बनकर
 माधूँगा तेहर प्याला ;
 जीवन की मधुना तो तेरे
 ऊपर कब का बार बुझा,
 आज निछावर कर दूँगा मैं
 तुमपर जग की मधुशाला ।

३

प्रियतम, तू मेरी हाला है,
 मैं तेरा प्यासा प्याला,
 अपने को मुझमें भरकर तू
 बनता है, पीनेवाला ;
 मैं तुमको छक छलका करता
 मस्त मुझे भी तू होता ;
 एक दूसरे की हम दोनों
 आज परस्पर मधुशाला ।

मादुच्छता मंगूर सता से
 लीच कल्पना की हाना,
 करि साझी बनकर जाया है
 मरकर कविता का प्याला ;

कभी न कब-मर सान्नी होगा
 सास पिएँ, दो जास पिएँ !

पाठ्यक्रम पीनेबाने,
 पुस्तक मेरी मधुशाला ।

मधुर भावनाओं की मधुधुर
 नित्य बनाता हूँ हास,
 मरता हूँ इस मधु से अपने
 मंजर का प्यासा प्यासा ;

उठा कल्पना के हाथों ने
 स्वयं इसे पी जाता हूँ ;

अपने ही मैं हूँ मैं साझी,
 पीने वाला, मधुशाला ।



६

मदिरास्य जाने वो पर मे
 खलता है पीनेवाला,
 किस पथ से जाऊँ ? असमय
 में है वह मोसाभासा,
 असम-असम पथ बनसाते :
 पर मैं वह खलमाता हूँ
 ग्राहपकड़ नू एक चला चल,
 वा जाएगा मण्डासा ।

७

चलने ही चलने में खिलवा
 बीजन, हाथ, खिता जाला !
 दूर अभी है, पर, कहना
 हर पथ बनसाते :
 हिमन है न व
 लाहम है न !
 विचरिन्वादिमुक्त
 दूर कसी है

युक्त से सुखविरत रहना या
 मनु, यदिरा, भादक हाना,
 हाथों में अनुभव करना या
 एक समित्त बलित ध्याना,
 ध्यान किए या मन में सुखपुर
 सुखकर, सुदर भागी या,
 और बड़ा धन, पबिक, न सुखको
 दूर लगेगी मनुष्याणा ।

यदिरा पीने की लज्जिताया
 ही बन जाए जब हाना,
 बचती की जागुरा मे ही
 जब आभासित हो ध्याना,
 इसे ध्यान ही करने करने
 जब हाथी हाथार, नहे,
 रहे न हाना, ध्याना, भागी,
 नुंते लिनेटी मनुष्याणा ।

१४

आम सुरा की पार मपट-सी
 कह न इसे देना ज्वाला,
 पेनिस मदिरा है, मठ इसको
 कह देना उर का घाला,
 दर्द नशा है इस मदिरा का,
 विगतस्मृतियाँ छाड़ी हैं ;
 पीड़ा में आनंद जिसे हो,
 आए मेरी मधुशाला ।

१५

जगती की शीतल हावा-सी
 पथिक, नहीं मेरी हवा,
 जगती के ठंडे प्याले-सा,
 पथिक, नहीं मेरा प्याला;
 ज्वाल-सुरा जलते प्याले में
 दग्ध हृदय की कविता है ;
 जलने से भयभीत न जो हो,
 आए मेरी मधुशाला ।

बहती हाला देखी, देखो
 लपट उठाती अब हाला,
 देखो प्यासा अब छूते ही
 होठ जमा देनेवाला ;
 'होठ नहीं, सप बेह दहे, पर
 पीने को हो बूँद मिले'—
 ऐसे मधु के दीवानों को
 भाव बुलाती मधुशाला ।

धर्म जन्म सब धला चुकी है
 जिसके खतर की ज्वाला,
 मंदिर, मस्जिद, गिरजे—सबको
 तोड़ चुका जो मतवाला,
 पंडित, मोमिन, पादरियों के
 फंदों को जो काट चुका,
 कर सकती है आज उसी का
 स्वागत मेरी ।

२३

कब दिट जाई, कब गूँदा
 मन्दर साही, कब धामा,
 कूँभे नव रत्न, बड़े रद्दे
 छिज्जु, हलाहल जी' हल्ला,
 भुवनाथ जी' बहल-बहल के
 खान लखी भुवनाथ बने,
 लया करेना कबिल बरषट,
 जना करेनी मधुशाला ।

२१

बुरा सदा कहलाया जग में
 बाँका, मद-बंचल ध्यासा,
 छल-छुसीसा, रसिया साफी,
 ज न बे सा पी ने जा सा ;
 पटे कहाँ से, मधुशाला जी'
 जग की जोड़ी छीन नहीं—
 जग जखैर प्रतिदिन, प्रतिपक्ष, पर
 नित्य - नवेसी मधुशाला ।

बिना पिए जो मधुमाता को
 बुरा कहे, वह मतवाला,
 पी लेने पर तो उसके मुँह
 पर पड़ जाएगा ताला ;
 दास-दोहियों दोनों में है
 जीत सुरा की, प्याले की ;
 विश्वविजयिनी बनकर जग में
 धाई मेरी मधुमाता ।

हरा-भरा रहता मदिराभय,
 जग पर पड़ आए वामा,
 वहाँ मुहर्रम का छम छाप,
 महाँ होलिका की ज्वाला ;
 स्वर्ग लोक से सीधी उतरी
 वसुधा पर, दुल क्या जाने ;

१०

बूढ़े बूढ़े मधु का रिचेला,
 निपट बूढ़े खट, मज, हल्ला,
 कादम्ब बन-बन काट, माली,
 बुद्धि बूढ़े मधु का प्यासा,
 काढ़ी मसाकर करके बर्तन
 रिचतिथि, रिचतिथि, रिचतिथि
 केनि, विजय, तुम बन में दीऊँ
 बर्तन बन हो मधुशाता।

११

तारक मन्त्रियों से सज्जित मज
 बन जाए मधु का प्यासा,
 सीसा करके भर दी जाए
 उसमें सागर-जल हाला,
 मत्त समीरण माली बनकर
 मधुरों पर छनका जाए,
 फेंके हों जो सागर सट-से,
 बिरल बने यह मधुशाता।

३२

अपरो पर हो कोई भी रस
जिह्वा पर लगती हाता,
मात्रन हो कोई हाथों में
लगता रक्खा है प्यासा,
हर मूरत साक्री की मूरत
में परिवर्तित हो जाती,
आँखों के आगे हो कुछ भी,
आँखों में है मधुशाला।

३३

पीये आज बने हैं साक्री
ले-ले फूलों का प्यासा,
मरी हुई है जिनके अन्दर
परिमल-मधु-सुरभित हाता,
माँग-माँगकर भ्रमरों के दल
रस की मदिरा पीते हैं,
शून्य-शून्यक मद-शोषित होते,
उपवन क्या है, मधुशाला !



३३ -

अकबाल है दुर्रिदैन,
 सुन्दर लकी, कदिवला,
 दिगल दिगल है जो सुनहली
 बाध नुहई का बाला,
 बीरल जिकरी येन्दल म
 लेने लरने है गलकी,
 गालकदम - मे बीदेराने ;
 गल लही है, कबुगाला ।

३४

रिगी ओर मे जानें केरें,
 दिगलाई देगी हागा,
 रिगी ओर मे जानें केरें,
 दिगलाई देगा व्यागा,
 रिगी ओर मे देगुं, मुगरी
 दिगलाई देगा तागी,
 रिगी ओर देगुं, दिगलाई
 पड़ती मुगरी कबुगाला ।

साड़ी बनकर मुरली आई
 हात लिए कर में प्यासा,
 जिनमें यह छलकाती आई
 जयर-सुवा-रस की हासा;
 योनिप्राज कर संगत उसकी
 कठार नागर कहाए;
 ऐसी ऐसी - कंचो को है
 नाच नचाती मधुसूता।

बारक बन मधु ~~मधुसूता~~
 साया घुर - सुमधुर - हासा,
 रागिनिनी बन साड़ी आई
 नरकर तारों का प्यासा,
 किन्हेवा के संकेतों पर
 रोड़ सखों, आसखों में,
 पान कराती भोगागन को;
 संकट बीणा मधुसासा।

३३

विषमता वह लगी आज
 मेहर लुप्त हो गई
 विनये धावर नाम करण
 वह बहू रस रसी हुआ,
 कर के निज दिने दी दी
 रस - दिने हो को
 निजनी पर लक्ष रसी है
 एक शरीर मधुशामा ।

३४

धन-धामन मधुर लता से
 लिख-लिख वह जाती हुआ,
 मदन-मदन-कोमल कलियों की
 प्याली, कुम्भों का प्याला
 लोम हिमोरे लोम बन-बन
 मानिक मधु से भर जाती,
 'स मत हो पी-पीकर
 मानवरोवर मधुशामा ।

४६

दुगधारा मस्जिद ने मुझको
बहकर है बीनेवाला,
टुकटाटा ठाकुरद्वारे ने
देन हूयेली पर प्यासा,
कहाँ छिछाना मिमता जब मैं
ममा ममाये काफिर को ?
घरानस्वम बनकर न मुझे यदि
मपना मेरी मधुशाता ।

४७

पक्कि बना मैं घूम रहा हूँ,
सभी जगह मिलती हाता,
सभी जगह मिलता प्रिय साझी,
सभी जगह मिलता प्यासा,
मुझे ठहरने का, हे मित्रो,
कष्ट नहीं कुछ भी होता,
मिमे न मंदिर, मिमे न मस्जिद,
मिल जाती है मधुशाता ।



४८

सजे न मस्जिद और नवाबी,
 कहता है बस्तावासा,
 सजसजकर, पर, साड़ी भाठा,
 बनटनकर, बी ने बा का;
 बेस, कहीं चुनना हो सकती,
 मस्जिद की मदिराभय से,
 चिर-विषया है मस्जिद ठेरी,
 सदा - मुहागिन मधुशासा !

४९

बजी नज़ीरी और नवाबी
 भूम मया बस्तावासा,
 गात्र निरी, पर ध्यान-मुरा में
 मग्न रहा बीनेवासा;
 बेस, मुरा मत मानो इसको,
 छाऊ कट्टे लो, मस्जिद को
 अभी भुर्वो तक सिस्सनाएसी
 ध्यान सधाना मधुशासा !



५०

मुगलमान भी हिन्दू हैं दो,
 एक, मगर, उनका प्याला,
 एक, मगर, उनका मदिनापद,
 एक, मगर, उनकी हाला;
 दोनों रहते एक न जब तक
 मस्जिद - मंदिर में जाते;
 और बढ़ाते मस्जिद - मंदिर,
 मेल कचाली मधुशाला !

५१

कोई भी हो शेर ममाजी
 या पंडित जपता माला,
 और भाव चाहे कितना हो,
 मदिना से रहनेवाला,
 एक बार इस मधुशाला
 आने से होकर निकल
 देखो कैसे नाम न लेती
 दाम्न उसका मधुशाला।

५४

यज्ञ-अग्नि-सी घबक रही है
 मधु की मट्ठी की ग्वाला,
 ऋषि-सा ध्यान मग्न बैठा है
 हर मदिरा पीनेवाला,
 मुनि कन्याओं-सी मधुघट ने
 फिरती साझी बा सा हैं;
 किसी तपोवन से क्या कम है
 मेरी पावन मधुशाला।

५५

सोम-सुरा पुरखे पीते थे,
 हम कहते उसको हाला,
 द्रौणकलश जिसको कहते थे,
 आज वही मधुघट आला;
 वेद-विहित यह रस्म न छोड़ो,
 वेदों के ठीकेदारों,
 युग-युग से हैं पुनर्जीवाई,
 नई नहीं है मधुशाला।

३६

वही शास्त्री वो भी शास्त्र
बनकर निकली सब हाना,
रंदा की संज्ञा अबत में
कहनाही, 'सा की सा ना';

देव-बदेव मिसे मे आए,
सुंद-मंदर बिटा रहे ।

किन्हीं किन्ना दम-दम, इसको
सुंद बनमती मनुष्याता ।

३७

कभी नहीं सुन बढ़ता, 'इसने,
हा, छू दी मेरी हाना',
कभी न कोई कहा, 'उसने
बूटा कर हाना व्यासा';

सभी जाति के लोग वही पर
साज बैठकर पीठे हैं ;

सौ सुधारकों का करती है
काम बडेनी मनुष्याता ।



निसी माय्य में निजनी बर
 उतनी ही पाएमा हाता,
 तिगा माय्य में बंछा बर
 बंछा हो पाएमा ध्याता;
 नास पटकतु हाव-भाव, पर
 इसछे क्य कुछ होने का,
 निसी माय्य में जो छेरे बर
 वही मिलेगी मपुशाना।

करते, करते कंजूसी तू
 मुझको देने में हाता,
 देते, देते तू मुझको बर
 यह दूटा-कूटा ध्याता;
 मैं तो सब इसी पर कटा,
 तू पीछे पछताएगी;
 जब न रहूँगा मैं तब मेरी
 याद करेगी मपुशाना।

प्यार का-का, बुराई का-
 छोड़ दिया ~~दूर~~ ^{दो} ~~दो~~ ^{दो}
 सौरभ दुका बाग-बाग है
 दर के सिटी का व्यापार;
 लाली की बरत-बरी
 मिटकी से बना लज्जावत बरत,
 दुनिया-बार की टोंकर काकर
 सारी देने मधुशाला ।

७३

शीत, सुद, लज्जावत, दुर्बल
 मानव सिटी का व्यापार,
 मरी हुई है जिसके बरत,
 मधु-मधु जीवन की हाना,
 मधु बनी है जीवन लाली
 अपने लज्जा-लज्जा कर लीला,
 काल प्रथम है लीनेवाला,
 संगुति है यह मधुशाला ।



७४

प्याले-जा नद हवे किसी मे
 भर दी जीवन की हाता,
 नया न भाया, जाना हवने
 से-सेकर मधु का प्याना,
 जब जीवन का दरें उमरगा,
 उसे दवाते प्याने से ;
 जगती के पहले छाकी से
 पूरा रही है मधुपाना ।

७५

मपने मंयूरों-से तब में
 हमने भर ली है हाता,
 क्या कहते हो, शेष, नरक में
 हमें उपाएगी ज्वाला,
 तब तो मदिरा खूब लिचेगी
 और पिण्या भी कोई,
 हमें नरक की ज्वाला में भी
 दीख पड़ेगी मधुपाना ।

७६

धम काट्ठा लेने लख, लख
 छूट चमूँवा भी हाता,
 पीड़ा, संघट, कष्ट नरक के
 क्या समझेना मनुष्यात्मा,
 फूट, फटोह, फुटिम, फुटिचारी,
 जम्मावी यमराजों के
 बंदों की लख पार बंधेयी,
 बाढ़ करेगी मनुष्यात्मा ।

७७

यदि इन जपनों से दो बातें
 प्रेम-भरी करली हाता,
 यदि इन लाली हाथों का भी
 पस - सर बहमाता व्याता,
 हानि भवा, लय, तेरी क्या है,
 स्वयं मुझे बदनाम न कर;
 मेरे टूटे दिल का है बस
 एक सिमोना मनुष्यात्मा ।

मनुष्यात्मा

७८

धार न मान् दुखधर जीवर,
 हमने ही मेरा हारा,
 जब बिगारो मे रहने को
 मुझ, उदा मेरा प्यारा,
 मोह, ताप के और स्वारहे
 हेनू निवा जब कराहा है,
 पर मैं कह रोपी हूँ तिमरी
 एक दवा है मधुशाखा।

७९

गिरती जाती है दिन-प्रतिदिन,
 प्रणयिनि, प्राणों की हारा,
 मान हुआ जाता दिन-प्रतिदिन,
 मुझने, मेरा तन - प्यारा,
 रुठ रहा है मुझसे, रूपसि,
 दिन-दिन जीवन का साझी,
 सूख रही है दिन-दिन सुंदरि,
 मेरी जीवन - मधुशाखा।

दब आरुण गाड़ी बनकर
 साथ निष् काली हाना,
 दीन होव में फिर आरुण
 मुप-रिमुप बट मनुष्यामा ,

यह अतिम बेहोली, अतिम
 साड़ी, अतिम प्याला है .
 पदिक, प्यार में बीना इनको
 फिर न मिलेगी मधुशाला ।

इसक रूढ़ी हो तन के बट से
 सगिनि, जब जीवन-हाला,
 पाव परम का से जब अतिम
 छाड़ी हो जानेवाला,

हाथ परत भूमे प्याले का,
 खाद-मुप जिह्वा भूले,
 कानों में गुम बहती रहना
 मधुकन, प्याला, मधुशाला ।



केरे जखती वर हो बंज
 बन्धु न सुनकोइस, लख
 केरी विद्या वर हो बंज
 बन्धु न बलकन, लख
 केरे छव के दीये बने
 बन्धो, बन्धु हो लख
 गह माह है लख न कहत,
 कहत बन्धो बन्धुलगा ।

केरे छव पर बह तोड़ हो
 जिनके बानू में हामर,
 माह पर बह, वो हो सुरभि
 मरिदा पीकर बतबाला,
 वे मुसफो वे कथा, जिनके
 पर मद-बगमम होते हों,
 और जमुँ उस ठौर, जहाँ पर
 कभी रही हो मयुजाला ।

८६

ज्ञात हुआ यम जाने को है
 से अपनी काली हाला,
 पंडित अपनी पोषी भूला,
 साधू भूल गया माता,
 और पुजारी पूजा भूला,
 ज्ञान सभी ज्ञानी भूला,
 किंतु न भूला मरकर के भी
 पी ने बा सा मधु सा सा ।

८७

यम से घसता है मुझको तो,
 चलने दे लेकर हाला,
 चलने दे साक्री को मेरे
 साथ लिए कर में प्याला;
 स्वर्ग, मरक या जहाँ कहीं भी
 तेरा जी हो लेकर घस;
 और सभी हैं एक तरह के
 साथ रहे यदि मधुसासा ।



पाप खगर पीना, समदोषी
 तो तीनों—सा की बा सा,
 नित्य पिलानेवासा प्याला,
 पी जानेवासी हाला;
 साथ इन्हें भी से चल मेरे,
 म्याय यही बतसाया है,
 कैद जहाँ में हूँ, की जाए
 कैद वहीं पर मधुशासा ।

शांत सकी हो अब तक, साफ़ी,
 पीकर किस उर की ज्वाला,
 'बीर, बीर' की रटन लगाता
 जाता हर पीनेवाला,
 कितनी इच्छाएँ हर जाने-
 वाला छोड़ यहाँ जाता !
 कितने खरमानों की बनकर
 कब सड़ी है मधुशासा !

६०

जो हावा मैं बन्द रहा था,
 वह न बिना झुत्तरी हुआ,
 जो धाना मैं मीन रहा था,
 वह न बिना झुत्तरी धाना,
 दिन ताड़ी के पीछे मैं था
 दीवाना, न बिना ताड़ी,
 जिसके पीछे था मैं पापस,
 हा, न बिना वह मधुमाता !

६१

देल रहा हूँ अपने आगे
 कब से मानिक-ग्री हावा,
 देल रहा हूँ अपने आगे
 दूध से कंपन का धावा,
 'वस्तु अब पाया !'—कह-कह
 कब से दौड़ रहा इसके पीछे,
 कितु रही है दूध धितिव-सी
 मुझसे मेरी मधुमाता !

६२

करी निपटा का तब बिछा,
 धिा बाजा मधु का व्यासा,
 धिा धात्री धरिण की बासा,
 धिा धात्री छाडीबासा,
 करी उवासा बासा करते,
 व्यासा फिर बसका धात्री,
 बाँधमिचोनी केन छी है
 मुझसे, मेरी मधुशाभा ।

६३

'मा जाने' कहकर कर पीछे
 कर सेठी छाडीबासा,
 होठ जमाने को कहकर हर
 बार हटा सेठी व्यासा;
 नहीं मझे मालूम कहीं तक
 यह मुझको ले जाएमी,
 बढ़ा-बढ़ाकर मुझको जाने,
 पीछे हटती मधुशाभा ।

मधुशाभा

६४

हाथों में जाने-जाने में, हाथ,
 पिगम जाना प्याला,
 अथरी पर जाने-जाने में,
 हाथ, कुमक जाती हाना;
 दुनियावालों, भाकर देरी
 क्रिमल की लूरी देगी,
 रह-रह जाती है बस मुझको
 मिलते - मिलते मधुशाला ।

६५

प्राप्य नहीं है तो, हो जाती
 लुप्त नहीं फिर क्यों हाना,
 प्राप्य नहीं है तो, हो जाता
 लुप्त नहीं फिर क्यों प्याला;
 दूर न इतनी हिम्मत हारें,
 पास न इतनी पा जाऊँ;
 ध्येय मुझे दीड़ती मरु में
 मगजल बनकर मधुशाला ।

६६

मिने न पर नतवा-समवा क्यों
 बाहुन करती है हामा,
 मिने न पर तरणा-तरणाकर
 क्यों लड़पाटा है प्यासा,
 हाय, निराली की बिषम मेसनी
 मस्तक पर यह खोद गई—
 'दूर रहेगी मधु की शाय,
 पाठ रहेगी मधुशाला !'

६७

मदिशलय में कब से बैठा,
 पी न सका जब तक हामा,
 यल छहिट भरता हूँ, कोई
 किन्तु उमट देता प्यासा;
 मानव-रस के आगे निर्बल
 भाग्य, मुना बिद्यालय में;
 'भाग्य-श्रबल, मानव निर्बल' का
 पाठ पढ़ाती मधुशाला ।



६८

दिग्भ्रम में था शायी सत्वर,
 मोम रहा था मैं प्यासा;
 दूँड रहा था मैं मृदुनयनी,
 किस्मत में थी मृदुचाता;
 बिताने अपना भाग्य समझने
 मैं मुक्त-सा थोसा सादा;
 किस्मत में था भवपट भरपट,
 दूँड रहा था मधुचाता !

६९

उस प्याने से प्यार मुझे जो
 दूर हथेली से प्यासा,
 उस हाता से भाव मुझे जो
 दूर खबर-मुक्त से हाथा;
 प्यार नहीं पा जाने में है,
 जाने के जरमानों में !
 पा जाता सब, हाथ, न इतनी
 प्यारी सगती मधुचाता !



१००

छाकी के है पास तनिक-सी
थो, मुस, मंजति की हाता,
सब जय है पीने की मातुर
संजे इरमज का व्याता ;

रेम-डेन कुछ आये बड़ते,
बटूतेरे दबकर मरते,
बीसन का सचपे नहीं है,
भीड़-जरी है मधुपाना ।

१०१

छाकी, जब है पास तुम्हारे
इतनी बोड़ी-सी हाता,
क्यों पीने की जमिसाया से
करते सबको मधुपाना ;

हम पिछ-पिछकर मरते हैं,
तुम छिप-छिपकर मुसकाते हो ;
हाय, हमारी पीड़ा से है
जोड़ा करती मधुपाना ।

